|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

4/6 (श्लोक 26-35), रविवार, 21 सितंबर 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/eroallB9RZo

त्रिविध कर्म, कर्त्ता एवं बुद्धि के लक्षण

भारतीय संस्कृति में हम किसी भी कार्य को मङ्गलमय तथा सफल बनाने हेतु परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं। इसी परम्परा के फलस्वरूप आज के सत्र का प्रारम्भ ईश वन्दना, राष्ट्र वन्दना, गुरु वन्दना तथा श्रीहनुमान चालीसा के पाठ के साथ दीप प्रज्वलन करते हुए किया गया।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम सब का ऐसा परम सौभाग्य जाग्रत हुआ है कि हम सब अपने इस मानव जीवन को सफल व सार्थक करने के लिए, अपने जीवन के परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, जीवन के हर क्षेत्र में विजय प्राप्त करने के लिए तथा जीवन की अबूझ पहेलियों को समझने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन में, उसके श्लोकों को सीखने में, उन्हें कण्ठस्थ करने में प्रवृत्त हो रहे हैं।
हम नहीं जानते कि हमारे इस जन्म के पुण्य कर्म हैं, हमारे पूर्व जन्मों के सुकृत हैं, हमारे पूर्वजों के पुण्यफल हैं जिसके कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया कि हम भगवद्गीता पढ़ने के लिये चुन लिये गये।

यह नम्र निवेदन पुनः-पुनः किया जाता है कि हमने गीताजी को नहीं चुना है अपितु हम गीताजी पढ़ने के लिये चुने गये हैं। भगवद्गीता जैसा दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है, ऐसा हमारे सन्तों एवम् महापुरुषों ने बारम्बार अपनी धारणाओं में स्पष्ट किया है।

आज पितृपक्ष की अमावस्या भी है और कल से नवरात्रि का आरम्भ भी है। अठारहवें अध्याय से पहले कुछ चिन्तन नवरात्रि का भी करना चाहिये।

हमारी सनातन संस्कृति में, जिसे हिन्दू संस्कृति भी कहा जाता है, उपासना पद्धति की तीन मुख्य धाराएँ हैं अथवा बिन्दु हैं-
पहली शाक्त शाखा
दूसरी शैव शाखा
तीसरी वैष्णव शाखा
विश्व के इतिहास में शाक्त शाखा सबसे प्राचीन शाखा मानी गयी है।

भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में शक्ति पूजा का विधान व वर्णन तथा उसके अवशेष सबसे प्राचीन परम्पराओं में मिलते हैं।

दूसरी है शैव पूजा- इसमें मुख्य रूप से भगवान् शिव की पूजा होती है।

तीसरी है वैष्णव पूजा- इसमें मुख्य रूप से विष्णु भगवान् तथा उनके अवतारों की पूजा होती है।

इन तीनों के महात्म्य तथा आर्विभाव को लेकर तीन मुख्य ग्रन्थ हैं।

शाक्त पूजा हेतु **श्रीमद्देवीभागवत् महापुराण** ।
शैव पूजा हेतु **श्री शिव महापुराण** तथा
विष्णु पूजा हेतु **श्रीविष्णु महापुराण** ।

यह नवरात्रि मुख्य रूप से शाक्त शाखा की उपासना शाखा है किन्तु शैव, वैष्णव, शाक्त सभी इसका पालन करते हैं। ऐसा कोई नहीं है जो देवी का पूजन नहीं करता है।

इस नवदिवसीय भक्तिकाल में दुर्गा सप्तशती के पाठ का भी बड़ा विधान है। जिस प्रकार **'सुन्दर काण्ड' 'रामचरितमानस'** का अङ्ग है, '**भगवद्गीता**' '**महाभारत**' का अङ्ग है, इसी प्रकार '**दुर्गा सप्तशती**' '**श्री मार्कण्डेय पुराण**' का अङ्ग है।

विशिष्ट बात ऐसी है कि संसार को चाहने वाले और भगवान् को चाहने वाले दोनों की उपासना विधि इसमें है।

संसार को चाहने वालों का प्रतिनिधित्व '**राजा सुरथ'** करते हैं तथा भगवान् को चाहने वालों का प्रतिनिधित्व '**समाधि** नामक वैश्य करते हैं। इन दोनों ने देवी की अर्चना अपने अपने ढङ्ग से की। वैसे तो सम्पूर्ण वर्ष में पाँच नवरात्र होती है किन्तु दो नवरात्र मुख्य रूप से अधिक प्रचलित हैं।

एक चैत्र नवरात्रि जो कि गर्मियों में आती है। इसकी फलश्रुतियों में नवमी के दिन श्रीराम का जन्म होता है।

दूसरी अश्विन नवरात्र जो कि शरद ऋतु में आती है इसीलिये इसे शारदीय नवरात्र भी कहते हैं। इसकी फलश्रुति में विजया दशमी पर रावण का अन्त होता है।

एक नवरात्रौ में दैवीय शक्तियों का उदय तथा दूसरी नवरात्र में आसुरी शक्तियों का पराभव। इस प्रकार के सङ्केत हमें दोनों नवरात्रियों के समापन पर मिलते हैं।

नवरात्रि तथा देवी की उपासना की विशेषता यह है कि सगुण तथा निर्गुण दोनों ही भक्त इसे मानते हैं।

जो देवी दुर्गा के सगुण रूप की आराधना करते हैं अर्थात् उनके प्रगट रूप को मानते हैं वही पूजा करते हैं-ऐसा नहीं है। शाक्त पूजा, सगुण तथा निर्गुण दोनों उपासकों को मान्य है।

जो सगुण उपासना करते हैं वे इन नौ दिनों में माँ के नौ रूपों की आराधना करते हैं। प्रथम दिवस माँ शैलपुत्री, द्वितीय माँ ब्रह्मचारिणी, माँ चन्द्रघण्टा, माँ कूष्माण्डा, माँ स्कन्दमाता, माँ कात्यायनी, माँ कालरात्रि, माँ महागौरी तथा माँ सिद्धीदात्री। नौ दिनों में नौ देवियों के स्वरूप से शक्ति की आराधना होती है।

सबके स्वरूप भिन्न, सबके अस्त्र-शस्त्र भिन्न, सबकी उपासना पद्धति में भी कुछ कुछ अन्तर, सबकी फलश्रुति में भी अन्तर किन्तु इस क्रम से इन नौ देवियों की उपासना का विधान नवरात्रि काल में है।

सगुण भक्त देवी की उपासना इस भाव से करते हैं-

देबि पूजि पद कमल तुम्हारे।

सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥
हे देवि! आपके चरणकमलों की पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं।

निर्गुण भक्त देवी की उपासना कैसे करते हैं?
दुर्गा सप्तशती का एक मन्त्र है, जिसका पाठ लगभग सभी करते हैं-
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

तो क्या निर्गुण उपासक शक्ति के रूप में देवी की आराधना करते हैं?
नहीं, नहीं।

'**शक्तिरूपेण, भक्तिरूपेण, ध्यानरूपेण, भावरूपेण, बुद्धिरूपेण, सिद्धिरूपेण संस्थिता**' इस प्रकार ज्ञान की, शक्ति की, ध्यान की, भक्ति की, भाव की, बुद्धि की सभी की आराधना के द्वारा देवी की निर्गुण आराधना की जाती है।

सामान्य रूप से अच्छे कार्य का अच्छा व बुरे कार्य का बुरा फल मिलता है यह सिद्धान्त तो हम जानते हैं किन्तु इस नौ दिन के विशेष काल का प्रभाव ऐसा है, इसी प्रकार से कुछ विशेष स्थान भी होते हैं तो विशेष स्थान व विशेष काल में की गयी उपासना का फल अनेक गुना बढ़ जाता है।

आप सामान्य रूप से जो पूजा, ध्यान, जप, पाठ, पारायण जो भी करते हैं उसका एक जो फल मिलता है, इस नवरात्रि काल में उस इन्हीं सब का फल कई गुना अधिक मिलता है। इसलिये इन दिनों में सभी आचार्य महापुरुष अपनी साधना को कभी भङ्ग नहीं करते हैं।

हमारे स्वामी जी वर्षभर भ्रमण करते रहते हैं किन्तु इन नौ दिनों में वे देवी-पूजन में लीन रहते हैं तथा अपना स्थान छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं।
इन दिनों में जो उपासना, सप्तशती का पाठ आदि तो करना ही चाहिये किन्तु साथ में अपने आप को थोड़ा संयत करने का प्रयास करना चाहिये। यह बड़ी ही उन्नत साधना है।

वर्षभर करना थोड़ा कठिन है किन्तु नौ दिन तो हम कर ही सकते हैं जैसे - एक समय भोजन न करना, फलाहार पर रहना, रसाहार पर रहना, मौन करना - चाहे आधे दिन का हो अथवा पूरे दिन का।

कम बोलना, कम खाना, अपनी प्रवृत्तियों को कम करना, कम आना-जाना, स्वयं को समेटना - बाँधना ।

आप जब नौ दिन ये प्रयास करेंगे तो नौ-दिनों बाद आप कुछ और ही बन जायेंगे। आपके अन्दर से उस प्रकार के बीज का उदय होगा जो कई वर्षों से आपके भीतर पड़ा था किन्तु पल्लवित नहीं हो सका क्योंकि उसे साधना की खाद नहीं मिली थी।

यह नौ दिनों की साधना आध्यात्मिक दृष्टि से से बहुत अधिक उपयोगी है। इसका उपयोग सभी बुद्धिमान लोगों को करना ही चाहिये।

अपने पुण्य कर्मों को कितना बढ़ा सकते हैं-यह सीधी दृष्टि इन नौ दिनों में रखो। इन नौ दिनों में मैं गुस्सा नहीं करूँगा, जोर से नहीं बोलूँगा , अपशब्द नहीं बोलूँगा, किसी का दिल नहीं दुखाऊँगा।

अपने अन्दर की त्रुटियों को ठीक करें।

जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह करे।

आप देखेंगे कि यदि नौ दिन तक आपने यह निष्ठापूर्वक किया तो देवी की कृपा से वे बातें आपके जीवन में स्थिर हो जायेंगी।

नवरात्र की पूर्व सन्ध्या पर हम शक्ति की आराधना करते हैं कि हम सबके भीतर उस चैतन्य शक्ति को वे जाग्रत करें और स्थिर करें। इसके साथ ही हम आज के विवेचन का आरम्भ करते हैं।

यह बहुत महत्त्व महत्त्वपूर्ण अध्याय है। एक-एक श्लोक सूत्रात्मक है। गत तीन सप्ताह से निरन्तर निवेदन है कि यदि रेलगाडी का अन्तिम डब्बा भी पकड़ लिया तो भी आप गन्तव्य तक पहुँच जायेंगे।

यदि यह अध्याय अच्छे से सुन लिया तो पूरी भगवद्गीता समझ में आ जायेगी। यह सारभूत अध्याय है।

18.26

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः(ख्), कर्ता सात्त्विक उच्यते॥18.26॥

(जो) कर्ता राग रहित, कर्तृत्वाभिमान से रहित, धैर्य और उत्साहयुक्त (तथा) सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार है, (वह) सात्त्विक कहा जाता है।

विवेचन- तीन प्रकार के कर्म हमने देखे। अब तीन प्रकार कर्ता के बारे में श्रीभगवान् के बता रहे हैं।

किसको सात्त्विक कर्ता माना जाये?
किसको राजसिक कर्ता माना जाये?
किसको तामसिक कर्ता माना जाये?

श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! सुनो जो कर्ता सङ्ग रहित, अहङ्कार युक्त वचन न बोलने वाला, धैर्य-उत्साह से युक्त और कार्य के सिद्ध होने अथवा न होने से जिसमें विकार नहीं आता है - ऐसे कर्ता को सात्त्विक कहा जाता है।

मुक्त सङ्गः- जिसके मन में विषयों की आसक्ति का सङ्गम नहीं हो। ध्यान दीजिये, जलेबी खाने में आपत्ति नहीं है। उसे छोड़ने की आवश्यकता भी नहीं है, उस जलेबी के प्रति मन में जो आर्कषण है उसमें विकार है।

विषयों का सङ्ग नहीं छोड़ना है, उनकी आसक्ति का सङ्ग छोड़ना है।

सात्त्विक कर्ता का विषयों की आसक्ति का सङ्ग कम होता जाता है।

अनहम्वादी - जो अहङ्कार नहीं करता है।

जो व्यक्ति अच्छे काम कभी-कभी करता है, उसे बड़ा अहङ्कार होता है। जो वर्ष में एक बार कोई, उपवास या भण्डारा करता है अथवा वर्ष में एक बार गणपति उत्सव अथवा नवरात्रि उत्सव करता है, उसे बहुत अहङ्कार होता है किन्तु जो नित्य ही करता है, उसे अपनी पूजा का कोई अहङ्कार नहीं होता है।

एक बार ऋषिकेश में एक महाराज मिले। उनसे पूछा गया कि महाराज! अच्छे कर्म को करने का भी तो अहङ्कार होने लगता है।
महाराज ने उत्तर दिया कि कभी-कभी करते हो इसलिये होता है। नित्य अच्छे कर्म करो क्योंकि जो कार्य दैनिक रूप से किया जाता है उसका अहङ्कार नहीं होता है।

हमसे दूसरे लोग आश्चर्यचकित होकर पूछते हैं कि आप नित्य पूजा करते हो ?

हम उत्तर देते हैं कि वह तो करनी ही पड़ती है। कौन-सी बड़ी बात है। यह तो वर्षों का नियम है।
जो बातें, जब तक हमारे दैनिक जीवन में नहीं आती हैं तभी तक उनका अहङ्कार होता है। दैनिक जीवन में आने के बाद उनका अहङ्कार नहीं होता है और यदि होता हो तो सावधानी रखनी चाहिये।

अहङ्कार से सात्त्विक कर्म भी राजसिक हो जाते हैं, अतः बिना अहङ्कार के कर्म करें। यह कार्य भगवान् ने मुझसे करवा लिया।

जब आप किसी अच्छे व्यक्ति से मिलेंगे व उसकी प्रशंसा करेंगे जैसे हमारे लर्नगीता के प्रशिक्षकों से ही मिलिये। जब आप उनकी प्रशंसा करेंगे तो वे यही कहेंगे कि भगवान् उनसे यह कार्य करवा रहे हैं। वे इसे भगवान्, गीता परिवार व स्वामीजी की कृपा मानते हैं। उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ है। उनमें आपको अहङ्कार दिखेगा ही नहीं। लगभग पन्द्रह हजार गीतासेवी ऐसे ही हैं। वे दिवस-रात्रि की सेवायें दे रहे हैं। वे किसी को यह सब बताना भी उचित नहीं समझते हैं। उल्टा लोग छिपाते हैं और यदि कोई दूसरा बताये तो भी उसे अल्प ही बताते हैं।

धैर्यवान- सात्त्विक कर्ता धैर्य से भरा हुआ है। वह परिस्थिति अनुकूल होने की प्रतीक्षा करता है।

सब कुछ अपने समय से होगा। तब तक मैं प्रतीक्षा करूँगा। वह अधीर नहीं है। धैर्यवान के साथ ही श्रीभगवान् ने एक और गुण डाला।

उत्साहवान- धैर्यवान के साथ ही वह उत्साही भी होना चाहिये। धैर्यवान का अर्थ यह सुस्त से नहीं है।

विपरीत परिस्थितियों में वह धैर्य रखे, उसका ध्यान विघ्न पर न हो, कार्य करते समय आने वाले विघ्नों को वह सावधानी से नियन्त्रित करे। वह परिणामों पर कार्य करता है।

कुछ समय पूर्व व्हाट्सएप ने गीता परिवार के सात सौ ग्रुप्स एकसाथ ब्लाक कर दिये थे। सबको चिन्ता हुई किन्तु स्वामी जी की कृपा से कई कार्यकर्ताओं ने उसे टेलीग्राम ग्रुप पर डालने की बात कही। सभी साधकों को सूचित भी किया गया था।

दो दिन में सारी व्यवस्थाएँ कर दी गयीं किन्तु जब दो दिन पश्चात् ही सायंकाल को व्हाट्सएप के प्रबन्धक ने फोन करके सहायता देने का आग्रह किया और एक घण्टे के भीतर ही सात सौ ग्रुप्स पुन: कार्यरत हो गये। अब व्हाट्सएप की एक पूरी टीम गीता परिवार के लिये अलग व्यवस्था बनाने में लगी हुई है ।

जब व्यक्ति में उत्साह होता है, तभी यह घटित होता है। यदि उत्साह न होता तो पूर्ण कार्यप्रणाली बन्द हो जाती, कक्षा बन्द हो जाती।

नेपाल सरकार ने दूरसञ्चार पर रोक लगायी तो अगले दिन गीता परिवार ने Viber (नेपाल में प्रयोग होने वाला social Media - app) पर कक्षा सञ्चालित की ।
मात्र एक दिन में समस्त नेपाली कक्षाओं के लिये सम्पूर्ण (viber network) खड़ा कर दिया गया। किसी की एक भी कक्षा की हानि नहीं हुई।

यह कोई साधारण बात नहीं है। इसके लिये किसी को कोई प्रशस्ति पत्र अथवा शाबासी नहीं मिलती है। कहीं कोई चित्र अथवा नाम नहीं छपता है किन्तु फिर भी चुपचाप निरन्तर सेवारत रहते हैं।

सात्त्विक सभी इसे ईश्वर का कार्य मानते हैं तथा स्वयं पर इसे उनकी कृपा मानते हैं। कई लोगों ने ऐच्छिक सेवानिवृत्ति (Voluntry retirement) ले ली, कई लोगों ने अपना व्यापार छोड़ दिया कि हमें श्रीकृष्णा की सेवा करनी है, गीता परिवार की सेवा करनी है।

यह उत्साह है। ये लोग बाधा को महत्त्व नहीं देते हैं।

इसके विपरित कई व्यक्ति कहते हैं कि वे सेवा तो करना चाहते हैं किन्तु उनके पास समय नहीं है। घर के कई काम हैं। इनमें से ही कई ऐसे होते हैं जो इन्हीं कामों के साथ उसी में से समय निकालकर काम में लग जाते हैं। यह उत्साह व सत्त्व की बात है।

जिसके अन्दर सत्त्व बढ़ेगा, वह विघ्न में भी मार्ग निकाल लेगा।
काम करने के उपाय भी होते हैं व काम न करने के बहाने भी होते हैं। हमारी दृष्टि किस ओर है?

सात्त्विक व्यक्ति उपाय की ओर जायेगा।
राजासिक या एवम् तामसिक व्यक्ति बहानों की ओर ।

ये सारे गुण होने के बाद भी यह अन्तिम गुण धारण करने पर ही सात्त्विक बन सकोगे।

सिद्ध्य सिद्धोः निर्विकारः-

मैं सारा कार्य धैर्य तथा उत्साह से, आसक्ति रहित, अहङ्कार रहित होकर करूँगा। इसके बाद कार्य होगा तो अच्छी बात है व यदि नहीं हुआ तो ईश्वर की इच्छा। इसके लिये मैं ईश्वर को दोष नहीं दूँगा ।

मन की हो गयी तो अच्छी बात । यदि नहीं हुई तो और अच्छी बात क्योंकि उसके (ईश्वर के) मन की हो गयी।

यह सात्त्विक कर्ता के गुण है। उसके मन में 'सिद्धि-असिद्धि का विकार नहीं है।

कार्य हो गया तो ठीक है, नहीं हुआ तो ठाकुर जी की जैसी इच्छा, आगे होगा। उन्हें नहीं लगता होगा कि अभी यह कार्य होना चाहिये।

18.27

रागी कर्मफलप्रेप्सुः(र्), लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः(ख्) कर्ता, राजसः(फ्) परिकीर्तितः॥18.27॥

जो कर्ता रागी, कर्मफल की इच्छावाला, लोभी, हिंसा के स्वभाव वाला, अशुद्ध (और) हर्ष-शोक से युक्त है, (वह) राजस कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! जो कर्ता आसक्ति से युक्त है, कर्मों के फल को चाहनेवाला है, लोभी है, दूसरों को कष्ट देने वाले स्वभाव का है, अशुद्धाचारी है, हर्ष और शोक से लिप्त है, वह राजस कर्ता है।
श्रीभगवान् ने पहले कहा- रागी। जो मन को अच्छा लगता है, वही करना है।

दो शब्द हैं- **प्रेयस्** तथा **श्रेयस्**।
प्रेयस् का अर्थ है, जो हमें प्रिय है।
श्रेयस् - जो मेरे लिए अच्छा है।
एक बात जो मुझे अच्छी लगती है और एक बात जो मेरे लिए अच्छी है, ये दोनों एक भी हो सकती हैं और अलग-अलग भी हो सकती हैं। एक है तो कोई चिन्ता की बात नहीं है किन्तु यदि अलग-अलग है तो मैं क्या चाहता हूँ?

विवेचन सुनना चाहिए, गीताजी पढ़नी चाहिए, यह श्रेयस् है। अब मन कह रहा है कि आज तो कहीं घूम कर आना है, आज तो सो लेता हूँ- बाद में सुन लेता हूँ। अब श्रेयस् और प्रेयस् के झगड़े में श्रेयस् जीता तो सात्त्विक और प्रेयस् जीता तो राजसिक। जो

करना चाहिए, उसे टाल दिया और मन को जिता दिया।

उसे क्या करना चाहिये? इस बात को छोड़ कर, उसे जो अच्छा लगता है वही करता है। वह अपनी रुचियों को ही प्रधानता देता है।

कर्मफलप्रेप्सु- जो कर्मों के फल को चाहने वाला है, येन-केन प्रकारेण अपने जो चाहिए, वह मिल जाये। चाहे गलत काम करना पड़े, झूठ ही क्यों न बोलना पड़े।

लुब्ध- यह लोभी होता है।

गोस्वामीजी ने कहा है-

जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥

लोभ की विशेषता यह होती है कि जितना राग, आसक्ति बढ़ने लगती है,जितना लाभ बढ़ते जाता है, उतना ही लोभ बढ़ने लगता है।
जरा सोचिये, आज से बीस, पच्चीस साल पहले का अपना वह समय, जब हमारी आर्थिक स्थिति कमजोर थी, तब भी हम किसी की आर्थिक सहायता आसानी से कर देते थे और आज ज्यादा धन होने पर भी मनुष्य दूसरों की आर्थिक सहायता नहीं करता। जब आर्थिक क्षमता हजार रुपये की थी, सौ रुपए खर्च कर देते थे। आज क्षमता करोड़ रुपए की है परन्तु सौ रुपए भी खर्च नहीं करते।

एक निर्धन व्यक्ति कुम्भ मेले में जाकर श्रद्धा से जितना दान-धर्म करके आता है, उतना एक विमान से आने वाला व्यक्ति नहीं कर पाता, भले ही वह अपने रहने आदि में हजारों, लाखों रुपए खर्च कर दे।

रजोगुण की प्रवृत्ति है कि उसका लोभ बढ़ता जाता है।

पहले घर नहीं था तो कोई बात नहीं थी, अब घर है तो एक फुट के लिए व्यक्ति न्यायालय में चला जाता है। अरे! हमारे पास तो कुछ था ही नहीं। श्रीभगवान् ने दे दिया तो अब उस पर भी झगड़ा कर रहे हैं।
यह याद रखें कि धन इसलिये बढ़ता है कि औरों की अधिक सहायता कर सकें। बैंक खाते में पैसे बढ़ाने से कुछ नहीं होता, उस धन से पुण्य कमा कर जाना है।

हिंसा- लोभी व्यक्ति अपने लोभ के कारण हिंसा करता है। राग, कर्मफल और लोभ, इन तीनों की प्राप्ति के लिए वह दूसरों का मन दुःखाता है। कड़वी बात कहने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता।

अनेक व्यक्ति बहुत शान से कहते हैं, “आज तो उसको इतना सुनाया कि एक सप्ताह तक नींद नहीं आएगी। यह अच्छी बात नहीं है।

एक सेठजी थे। उनका सेवक चाय लेकर आ रहा था। संयोग से उसका पैर लड़खड़ाया और गिलास गिर कर टूट गया तथा चाय बिखर गयी। सेठजी सेवक को डाँट लगाते हैं और उसके वेतन से पैंतीस पैसे काटने की बात करते हैं। सायङ्काल में जब सेठजी उस नौकर के साथ मन्दिर गये और पूजा करने लगे। इतने में सेवक मुस्कुरा दिया। सेठजी पूजा करके बाहर आये और उससे हँसने का कारण पूछा। उसने कहा, "सेठजी! आप श्रीभगवान् से अपने पापों के लिए क्षमा माँगते हैं। जब आप एक गिलास के फूटने पर मुझे क्षमा नहीं कर पाये तो क्या श्रीभगवान् आपके सब पापों के लिए आपको क्षमा कर देंगे?" सेठजी की आँखें खुल गयीं। सेवक की बात साधारण है पर बहुत गहरी है।
साधारण बात पर, मन को दुःखाने वाली कड़ी बात किसी को कह देना, रजोगुण के लक्षण हैं। कर्मफल में आसक्त व्यक्ति, अपने मन की न होने पर पूरा घर सिर पर उठा लेता है।

कर्म की आसक्ति, फल की आसक्ति तथा लोभ, जब ये तीनों मिलते हैं तब चौथा अवगुण "हिंसा" उत्पन्न करते हैं।

जो जितना अधिक रागी, वह उतना ही लोभी। जो जितना लोभी होगा वह उतना ही अधिक क्रोधी भी होगा।

अशौच- अशुद्धाचारी है। जो अधिक लोभी होगा और कर्मफल में अधिक आसक्त होगा, उसके जीवन में शुद्धता नहीं रहती। बस अपनी इच्छापूर्ति में ही लिप्त रहता है। झूठ, कपट में आगे रहता है। लोभी व्यक्ति झूठी शपथ खाने में सिद्ध होता है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वाणी में अशौच, कर्म में अशौच, मन में अशौच, हर स्थान पर इसकी अपवित्रता रहती है। पवित्रता का अभाव।
हर्ष और शोक से प्रभावित रहता है।
कुछ अच्छा हुआ तो तुरन्त फेसबुक पर स्टेटस लगाता है और हर समय देखता रहता है कि किसने देखा,किसने पसन्द किया आदि। कुछ बुरा हुआ तो दुःख भरे गीतों के स्टेटस लगाता है।

अगर वह पूछ ले मुझसे
किस बात का गम है
तो किस बात का गम है
अगर वह पूछ ले मुझसे

18.28

अयुक्तः(फ्) प्राकृतः(स्) स्तब्धः(श्), शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च, कर्ता तामस उच्यते॥18.28॥

(जो) कर्ता असावधान, अशिक्षित, ऐंठ-अकड़वाला, जिद्दी, उपकारी का अपकार करनेवाला, आलसी, विषादी और दीर्घसूत्री है, (वह) तामस कहा जाता है।

विवेचन- तमोगुण कर्ता के विषय में बताते हुए श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! जो कर्ता अयुक्त, शिक्षा से रहित, घमण्डी, धूर्त, दूसरों की जीविका का नाश करने वाला, शोक करने वाला आलसी और दीर्घ सूत्री है, वह तामसिक कहलाता है।

अयुक्त- ऐसा व्यक्ति कोई भी काम समय पर नहीं करता। जिस समय पर जो नहीं करना चाहिए, वह कर देना अयुक्त कहलाता है। इसका हर काम बाद में ही होगा। ऐसे व्यक्ति से जब भी पूछो कि काम हो गया? तो वह यही उत्तर देगा कि "बस होने वाला है। बस अभी करेंगे। अब करने जा रहा हूँ"।
ऐसे व्यक्ति अनुचित स्थान पर अनावश्यक बात कह देते हैं। कब, कहाँ कौन सी बात कहनी है, इसका विवेक नहीं होता। गलत स्थान पर गलत प्रतिक्रिया करते हैं।

अप्राकृत- जो शिक्षा रहित हो।
हम इतिहास की ओर चलते हैं। अमेरिका की उत्पत्ति कैसे हुई? यह जो अमेरिका है आज सारे विश्व पर धौंस जमाता है, इतना शक्तिशाली बना फिरता है। बुरे व्यक्तियों का राजा बना हुआ है। यह इनकी जेनेटिक्स में ही है। पन्द्रहवीं शताब्दी के आसपास ब्रिटेन में जो सबसे खूँखार कैदी होते थे, नियमों के तहत इन्हें मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता था और छोड़ा भी नहीं जा सकता था, तो सारे जीवन इन्हें बैठा कर खिलाने से क्या लाभ, तो उन्हें दण्ड के रूप में जहाज से अमेरिका पहुँचा दिया जाता था ताकि देश में उत्पाद भी न हो और देश का व्यय भी न लगे। वहाँ के जो काले वर्ण के आदिवासी लोग थे, उनको ब्लैक तो कहा ही साथ ही साथ उनका नाम रखा- रेड इण्डियंस। ये अप्राकृत हैं, असभ्य है, अशिष्टाचारी हैं। बाद में जब ये लोग भारत में आए तो भारत के लोगों को भी इण्डियन कहा और जो लोग वहाँ से पश्चिम में रहते थे, उन्हें वेस्ट इण्डियन कहा।

इसलिये हमारे प्रधानमन्त्री जी ने कहा कि हम हमारे देश को भारत कहेंगे। अब **प्रेसिडेंट ऑफ़ इण्डिया** कहकर सम्बोधित नहीं किया जाता **प्रेसिडेंट ऑफ भारत** कहकर सम्बोधित किया जाता है। हम जहाँ भी अपने देश का नाम लें, भारत ही कहें।

हमें विवेकपूर्वक भारत शब्द का ही प्रयोग करना चाहिए। इण्डियन शब्द का मूल अर्थ है असभ्य।

इन लोगों को जब पढ़ना भी नहीं आता था, तब हमारे यहाँ पाणिनि व्याकरण का सबसे बड़ा ग्रन्थ लिखा गया।
सत्रहवीं शताब्दी तक पूरे यूरोप में एक भी विद्यालय साधारण व्यक्तियों के लिए नहीं था। केवल शाही विद्यालय होते थे। हमारे यहाँ दूसरी शताब्दी में तक्षशिला तथा नालन्दा नाम के विश्व विद्यालय थे जिनमें पूरे विश्व से विद्यार्थी आते थे। हमारे यहाँ उस काल में विश्व विद्यालय होते थे, जब और देशों में स्कूल नहीं होते थे।
विश्व विद्यालय हमारी कल्पना है।
श्लोक सँख्या-18:28 विश्वविद्यालय
ह्वाँग हो नाम का चीन का एक व्यक्ति यहाँ आया था, उसने तक्षशिला विश्वविद्यालय का वर्णन किया है।
हम भारतीय हैं और हमारे देश का नाम **भारत** है।
भा का अर्थ प्रकाश है और रत का अर्थ है रमना।
जो प्रकाश में रमा हुआ है, वह है भारत। जो ज्ञान में रमा हुआ है, जो ज्ञान की खोज करने वाला है।
स्तब्ध का अर्थ है उल्टी बात करने वाला। यह तामस है।
मूढ़ वह होता है जो अज्ञान में गलती करता है जबकि शठ जानबूझ कर गलती करता है।
यह गलती करे समय ही विचार कर लेता है कि मुझको झूठ बोलना है। पकड़े जाने पर बोलता है कि अरे मुझे तो ध्यान ही नहीं था।
अनैष्कृत का अर्थ है कृतघ्न। अपने ऊपर उपकार करने वाले का भी अपकार करना करने वाला।
महाभारत में यक्ष प्रश्न में यक्ष ने पूछा, "युधिष्ठिर! यह बताओ कि पृथ्वी पर सबसे बड़ा भार किस बात का है? युधिष्ठिर ने कहा, "कृतघ्नता का।"
जिसने अपने ऊपर उपकार करने वाले का उपकार नहीं माना, वह पृथ्वी पर भार है।
जीवन में जिसका भी आपके ऊपर थोड़ा भी उपकार है, उसका सदा उपकार मानिएगा, उसकी सदा स्तुति कीजिएगा। जीवन में सदा उनका उपकार मानना चाहिए और जो नहीं मानता है, वह अनैष्कृत होता है।
इसका एक और अर्थ है- जो दूसरों की जीविका का नाश करे, वह भी नैष्कृत होता है। कई लोग, जब अपना काम नहीं होता तो दूसरे का काम बिगाड़ देते हैं।
विषादी का अर्थ है हर समय रोते रहना। कभी मौसम की शिकायत, कभी कोई और शिकायत।
लखनऊ में कहावत है कि **इनका मोहर्रम कभी खत्म ही नहीं होता।**

अलसः-इसका अर्थ है जिस काम में रूचि नहीं है, उसे टाल दो। आलस्य करते रहते हैं।

दीर्घसूत्र कार्य आरम्भ तो करते हैं किन्तु कभी उनका कार्य पूरा नहीं होता। इनसे जब भी कार्य के लिए पूछते हैं, वह लम्बित ही होता है। हर कार्य का बहाना बनाते हैं "हाँ! किया था, थोड़ा सा रह गया है। हाँ! करने वाले हैं, अभी कर रहे हैं" आदि।
जिसके जीवन में लम्बित कार्यों की सूची जितनी अधिक है, उसके जीवन में दीर्घसूत्रता उतनी अधिक है।

18.29

बुद्धेर्भेदं(न्) धृतेश्चैव, गुणतस्त्रिविधं(म्) शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण, पृथक्त्वेन धनञ्जय॥18.29॥

हे धनञ्जय! (अब तू) गुणों के अनुसार बुद्धि और धृति के भी तीन प्रकार के भेद अलग-अलग रूप से सुन, (जो कि मेरे द्वारा) पूर्णरूप से कहे जा रहे हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे धनञ्जय! अब तू गुणों के अनुसार बुद्धि और धृति के भी तीन प्रकार के भेद अलग-अलग रूप से सुन, अर्थात् सात्त्विक, राजसिक, तामसिक के सम्पूर्णता से कहे जाने वाले भेद ध्यानपूर्वक सुन।"
श्रीभगवान् ने कहा, "अभी तक तुमने तीन प्रकार के कर्ता, तीन प्रकार के कर्म, तीन प्रकार के ज्ञान सुने और अब तीन प्रकार की बुद्धि तथा तीन प्रकार की धृति सुनो।"

हमने कर्म सङ्ग्रह सुना था- कर्ता, कर्म और करण।

करण के तीन भाग- अन्तःकरण, बाह्यकरण और उपकरण।
इस करण में सबसे मुख्य है बुद्धि। कोई भी कर्म करना हो तो सबसे महत्वपूर्ण साधन है हमारी बुद्धि।

कार्यस्थल से घर आए, रास्ते में बहुत कुछ देखा पर सब कुछ याद नहीं रहा। जिस विषय में रुचि थी, जैसे आते-आते पपीते का ठेला दिखा था। याद रह गया पपीता का ठेला। बुद्धि कहाँ पर थमती है या अटकती है, उसकी बात है। तीन स्थानों पर बुद्धि और धृति को श्रीभगवान् ने साथ में लिया है।

छठे अध्याय के पच्चीसवें श्लोक में, अठारहवें अध्याय के इक्यावनवें श्लोक में बुद्धि और धृति में अन्तर को हम इस प्रकार समझते हैं-
बुद्धि को समझिए दूरदर्शन और धृति को समझिए इसका एक चैनल। पूरा मोबाइल हो गया बुद्धि। मोबाइल का एक ऐप हो गया धृति।

पहला, छठे अध्याय के पच्चीसवें श्लोक में कहा है-
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥6.25॥

दूसरा, अट्ठारहवें अध्याय के उनतीसवें श्लोक में और इक्यावनवें श्लोक में फिर से कहा-

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं श्रृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।।18.29।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥18.51॥

दो मित्र पाठशाला गए। किसी के निधन के कारण विद्यालय में अवकाश घोषित हो गया था। बच्चे प्रसन्न हो गये। प्रसन्नता से चिल्लाए जोर से, "अरे! छुट्टी हो गई।" एक मित्र ने कहा, "मेरे पास क्रिकेट मैच की दो टिकट हैं। अपने शहर में मैच है लेकिन पिताजी ने अनुमति नहीं दी। कहा था स्कूल नहीं छोड़नी है। स्कूल के बाद जाता तो आधा मैच छूट जाता। चलो छुट्टी हो गई! सीधे मैच देखने चलते हैं।"

दूसरा मित्र कहता है, "छुट्टी तो हो गयी, क्रिकेट मैच भी देखना है पर मेरे मन्दिर के दर्शन बाकी हैं। अभी ऐसा करते हैं, मन्दिर के दर्शन करते हुए स्टेडियम चलते हैं।" दूसरे मित्र ने कहा, "दर्शन तो शाम को भी कर लेंगे। मैच शाम तक समाप्त हो जाएगा।" अगले दिन दोनों मिले तो दोनों ने एक दूसरे से पूछा, "तुम कहाँ रह गए थे? मिले ही नहीं।" दूसरे मित्र ने कहा, "मैं मन्दिर नहीं गया। मैं स्टेडियम पहुँच गया। मैं तुम्हें ही ढूँढता रहा। पूरे स्टेडियम में तुम दिखे ही नहीं और मैं मैच भी नहीं देख पाया।" पहला मित्र बोला, "मुझे ऐसा लगा कि मैंने तुमसे कुछ गलत कह दिया कि मैं मन्दिर में श्रीभगवान् के दर्शन के बाद स्टेडियम चला जाऊँगा, ऐसा सोच कर मन्दिर दर्शन करने आ गया। मैं मन्दिर में तुम्हारा रास्ता देखता रहा और पता नहीं बाद में क्या हुआ मन्दिर से उठने का मन ही नहीं हुआ।"

मूल बात यह है कि बुद्धि के विपरीत सङ्ग से कौन अपनी धृति में क्या धारणा कर लेगा।

स्टेडियम जाने वाले व्यक्ति ने मन्दिर जाने वाले के सङ्ग से मन्दिर जाने की धारणा की और जो मन्दिर जाने वाला था, उसने अपने मन में रजोगुण को धारण कर लिया। उसने रजोगुण के कारण राजसिक धारणा कर ली और राजोगुण वाले ने सात्त्विक

सङ्ग के कारण सात्त्विक गुण धारण कर लिया। दोनों ने अपनी धृति को बदल लिया अर्थात् जैसा हम सङ्ग करते हैं, वैसा रङ्ग हमारे ऊपर चढ़ जाता है। दीर्घकाल का सङ्ग बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

शिवजी ने गरुड़जी को कहा, "कागभुशुण्डि जी के पास जाना और शीघ्र मत लौट आना। परिणाम तब होगा जब देर तक ठहरोगे।"

तबहिं होइ सब संसय भंगा।जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

दो-तीन कक्षा गीताजी की कर ली, छः बार विवेचन सुन लिया, उससे जीवन नहीं बदलेगा। दीर्घकाल तक सत्सङ्ग करना पड़ता है। दीर्घकाल तक गीताजी पढ़नी पड़ती है। दीर्घकाल तक महापुरुषों को सुनना पड़ता है। धारणा धैर्य के परिणाम से आती है।

पतञ्जलि मुनि ने अष्टाङ्ग योग में आठ मार्ग बताए हैं।
यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि।
आपको किसी आठ मञ्जिल के घर की सातवीं मञ्जिल पर जाना है, क्या ऐसा कोई तरीका है कि छः मञ्जिलों को स्पर्श किए बिना आप सातवीं मञ्जिल तक पहुँच जाएँ। चाहे किसी साधन से जाएँ, सीढ़ियों से, लिफ्ट के माध्यम से सभी मञ्जिलों को स्पर्श करते हुए ही आप वहाँ पहुँच पाओगे।

हम अष्टाङ्ग योग के कोई भी सोपान का पालन नहीं करेंगे और सीधे ध्यान में बैठ जाएँ, ऐसा हो नहीं सकता। ध्यान लग ही नहीं सकता।
ध्यान से पहले धरणा। धृति के अर्थ अलग-अलग प्रसङ्ग से अलग-अलग देखने पड़ते हैं। धैर्य, दृढ़ता, धारणा, अनुकम्पन।
श्रीभगवान् ने चार बातें बताई हैं- प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य-अकार्य, भय-अभय, बन्धन-मोक्ष।

18.30

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं(म्) मोक्षं(ञ्) च या वेत्ति, बुद्धिः(स्) सा पार्थ सात्त्विकी॥18.30॥

हे पृथानन्दन ! जो (बुद्धि) प्रवृत्ति और निवृत्ति को, कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं-"हे पार्थ! प्रवृत्ति मार्गी यह सोचेगा कि आज छुट्टी का दिन है। कार्यालय नहीं जाना है। बाल कटवा लेता हूँ, मित्र से भी मिलने जाना है, घर का सामान भी लाना है।" बहुत काम हैं। उसके अनुसार दिन की योजना बना लेता है।

निवृत्ति मार्ग वाला व्यक्ति सोचता है कि आज दस बजे तक सोयेंगे, अल्पाहार बिस्तर पर ही दे दो, स्नान नहीं करना है। सामान्य अर्थ में प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग वाला ऐसा होता है। हम सबने भी कभी-कभी ऐसा किया है।

आध्यात्मिक स्तर की प्रवृत्ति -निवृत्ति अलग बात है। आध्यात्मिक मार्ग में, कर्तव्य कर्मों में रुचि, नियत कर्मों में, निहित कर्मों में रुचि, यह हो गई प्रवृत्ति।

आज कोई कार्य नहीं है तो जन्माष्टमी आने वाली है तो चलो बन्दनवार बना लेते हैं।

आज से बीस वर्ष पहले गृहणियाँ, दादी, माँ आदि, जब कोई कार्य नहीं होता था तो दिन भर दिये की, रूई से बत्ती बनाती रहती थी।
अपने समय का सदुपयोग कैसे करें? इसका विचार करते हैं।
यह आध्यात्मिक प्रवृत्ति हुई।

विवेकानन्द जी निवृत्ति मार्ग के थे। वे कई दिन तक ध्यान में बैठते थे। परमहंस जी से उन्होंने ध्यान की शिक्षा प्राप्त की।

एक बार ऐसा हो गया की तीन दिन तक नरेन्द्र ध्यान में बैठे रहे। तीन दिन बाद ठाकुर ने उनका ध्यान खींचा। वे अद्‌भुत सिद्ध सन्त थे। नरेन्द्र ने कहा, "मेरा ध्यान नहीं लग रहा" तो ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैंने ध्यान करने के लिए तुम्हें शिष्य नहीं बनाया। तुम्हें सारे विश्व का कल्याण करना है।" उन्होंने विवेकानन्द को प्रवृत्ति की ओर लगाया। विवेकानन्द मूल में प्रवृत्ति मार्गी नहीं थे। गुरु आज्ञा से प्रवृत्ति में लगे। उनकी व्यक्तिगत रुचि तो ध्यान समाधि में थी। विवेकानन्द जी ने पूरे विश्व का भ्रमण किया। उनकी योग्यता उनके गुरु जानते थे।

स्वामी रामतीर्थ निवृत्ति मार्ग के सन्त हैं । लाहौर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर रहे हैं। संन्यास लेकर रामतीर्थ हुए। किले पर जाकर एकदम एकान्त में बिना साधनों के रहे।

कामनारहित प्रवृत्ति भी निवृत्ति है। जिसमें कोई व्यक्तिगत अपेक्षा, आकाङ्क्षा नहीं है, वह प्रवृत्ति भी निवृत्ति हो जाती है।

कामना सहित निवृत्ति भी प्रवृत्ति है।
दूसरों की प्रवृत्ति-निवृत्ति समझना कठिन होता है। स्वामी जी जैसे सन्त तीन सौ पैंसठ दिन कार्यरत रहते हैं। पचहत्तर वर्ष की आयु है। हम तो कल्पना ही नहीं कर सकते इतने श्रम की, जितना श्रम वे करते हैं। उनकी प्रवृत्ति में ही निवृत्ति है। स्वामी जी इसका प्रतीक हैं। न उन्हें कोई अपेक्षा है और न ही उन्हें कुछ मिलता है। उनका उद्देश्य है कि कितना अपने हाथ से देश का कल्याण हो जाए।समाज का हित हो जाए।
अनेक व्यक्ति प्रवृत्ति का त्याग करते हैं।

वे प्रवृत्ति का त्याग क्यों करते हैं?
चार मूल कारण हैं-
1. सुविधा के कारण,
2. असफलता के भय से
3. श्रम और धन बचाने के लिए,
4. झञ्झटों के कारण

चार मित्र एक मित्र के विवाह में में गये। मित्र ने चारों को बैठाया और एक कागज के टुकड़े में एक-एक लड्डू रखकर चला गया। चारों ने लड्डू को देखा। थोड़ी देर बाद उठ गये। मित्र ने पूछा, "लड्डू खाया कि नहीं? तो पहले मित्र ने कहा, "आज सुबह अधिक भोजन हो गया था, भूख बिल्कुल नहीं थी, इसलिये नहीं खाया।"
दूसरे ने कहा, "यह कोई तरीका है? एक लड्डू रखकर चले गये। कम से कम चार लड्डू तो रखते। इसलिये नहीं खाया।"
तीसरे मित्र ने कहा, "मुझे तो भूख भी लगी थी, खाने की इच्छा भी थी पर तुम दोनों ने नहीं खाया, इसलिये मैंने भी नहीं खाया।"
जब चौथे मित्र से पूछा गया कि तुमने क्यों नहीं खाया? तो उसने कहा, "मेरी इच्छा नहीं थी पर यदि कोई जोर देकर कहता कि खा लो तो मैं खा लेता। मुझे किसी ने नहीं कहा, इसलिये नहीं खाया।"

चारों की बातों में निवृत्ति दिखती है पर वह निवृत्तिशील नहीं है। केवल चौथा व्यक्ति निवृत्ति वाला है। बाकी तीन न खाकर भी प्रवृत्ति वाले हैं। इसलिये दूसरे की निवृत्ति-प्रवृत्ति समझना बड़ा कठिन है।

निवृत्ति मार्ग में सबसे पहले आदि शङ्कराचार्य जी का नाम आता है। पिछले दो हजार वर्षों में जितना काम उन्होंने किया, उतना भारतीय संस्कृति के किसी भी महापुरुष ने नहीं किया। पूरे भारत को बौद्ध धर्म से वापस सनातन धर्म में बदलकर गये। चार शङ्कराचार्य पीठ स्थापित कर गये। जितनी भी आज हमारी पूजा पद्धतियाँ हैं, नियम आदि हैं धर्म के, सब शङ्कराचार्य जी ने स्थापित की हैं, उसके अनुसार हैं। बौद्ध धर्म ने हमारा सारा धर्म, क्रियाकलाप बदल दिया था। व्रत, उपवास कुछ नहीं बचे थे। डूबी हुई मूर्तियों को वापस निकाल कर मठों में स्थापित किया। अनेक संहिताओं की रचनाएँ कीं।

क्या करना, क्या नहीं करना, इसकी स्पष्टता सात्त्विक प्रवृत्ति का प्रतीक है। जो अपनी बुद्धि के द्वारा प्रवृत्ति-निवृत्ति का निश्चय

कर ले, वही सात्त्विक है।
सांसारिक भय, प्रिय का वियोग और अप्रिय का योग।
सांसारिक अभय वस्तुस्थिति के आश्रय से दूर होता है।
आध्यात्मिक अभय, भागवत् आश्रय से, गुरु सेवा से, गुरु कृपा से दूर होता है।

परशुराम जी ने पूरा प्रयास किया कि श्रीराम और लक्ष्मणजी भयभीत हो जाएँ, पर नहीं कर पाए। क्यों भयभीत नहीं हुए?

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई।अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के।उघरे पटल परसुधर मति के॥

राम रमापति कर धनु लेहू।खैंचहु मिटै मोर संदेहु॥

अन्तिम बात-
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इसको बन्धन माना गया और जब यह तीनों नहीं चाहिए, केवल मोक्ष चाहिए, तब वह सात्त्विक है।
श्रेष्ठ बुद्धि का लक्षण है जिसे केवल मोक्ष चाहिए। मोक्ष की आकाङ्क्षा है।

18.31

यया धर्ममधर्मं(ञ्) च, कार्यं(ञ्) चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति, बुद्धिः(स्) सा पार्थ राजसी॥18.31॥

हे पार्थ! (मनुष्य) जिसके द्वारा धर्म और अधर्म को, कर्तव्य और अकर्तव्य को भी ठीक तरह से नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे पार्थ! जिस बुद्धि के द्वारा धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।" इसका अर्थ सात्त्विक के विरुद्ध होगा, कहीं उचित तो कहीं अनुचित। जैसा होना चाहिए, उसे हम सहन नहीं करते। हम सब उसी श्रेणी में आते हैं।

18.32

अधर्मं(न्) धर्ममिति या, मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च, बुद्धिः(स्) सा पार्थ तामसी॥18.32॥

हे पृथानन्दन ! तमोगुण से घिरी हुई जो बुद्धि अधर्म को धर्म मान लेती है और सम्पूर्ण चीजों को उलटा (मान लेती है), वह तामसी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- "हे अर्जुन, यह जान लो कि तमोगुण से घिरी हुई बुद्धि, अधर्म को धर्म जैसा मान लेती है और अन्य पदार्थों को भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसिक है।

जो सदैव उल्टा चलता है, ऐसे व्यक्तियों की आज-कल अधिकता है। ये स्वयं तो कुछ करते नहीं, जो मन्दिर जाते हों, तीर्थ जाते हों या श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ रहे हों, तो ऐसे लोग उन्हें कहते हैं कि किन चीजों मे लगे हो?
क्यों श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ते हो?
क्या मिलेगा?
इससे क्या होगा?
आदि-आदि। यहाँ तक भी कह देते हैं, "अरे! क्या श्रीमद्भगवद्गीता में लगे हुए हो? जीवन का आनन्द ले लो, मजे कर लो।" ऐसे लोग हमारे आस-पास अवश्य मिल जाते हैं। उसमें भी, यदि कोई युवा, गीता-पाठ में लगा होगा तो कहने लगते है, "क्या पागल हो गए हो! बुढ़ापे के कामों को अभी ले बैठे हो।" यह सब कुछ उल्टी सोच है।

ऐसे व्यक्ति जप करने वाले को जड़ कहेंगे-
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया ना कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

माला फेरत जुग भया फिरा ना मन का फेर ।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर॥

ऐसे व्यक्ति इस प्रकार के दोहे कहने से भी नहीं हिचकिचाते। किसी तरह से सामने वाले को धर्मी से अधर्मी कर दो, जो अच्छे कार्य में लगा हुआ है, उसे हटा दो। ये शुभ कार्य करने वाले को दिखावा करने वाला कह देते हैं। कथा और सत्सङ्ग को धन का अपव्यय बता देते हैं। दुराचारी नारियाँ, स्त्री-आन्दोलन चलाते हुए दिख जाएँगी। यह समाज कब गौ-प्रेमी से कुत्ता-प्रेमी बन गया, पता भी नहीं चला! गौ हत्या हो रही है, सन्तों ने अनेक वर्षों से आन्दोलन जारी रखे हैं पर कुछ हुआ नहीं। किसी सरकार ने ऐसा कुछ नहीं किया। जब उच्चतम न्यायालय आदेश देता है कि कुत्तों को बाड़े में रखा जाए तो ये सड़क पर उतरकर रोने लग जाते हैं, विरोध प्रदर्शन करने लग जाते हैं। मूर्खता की कोई सीमा ही नहीं है। बुद्धि में ताले पड़े हुए हैं। सड़क के कुत्ते मनुष्यों को काट रहे हैं फिर भी ये कहते हैं कि कोई बात नहीं। विडम्बना की बात तो यह है कि कुत्तों के अधिकार उन्हें मनुष्य के अधिकार से भी बड़े लग रहे हैं। यह उचित है कि कुत्ता-प्रेमी होना कोई गलत बात नहीं है, परन्तु हम जिन गौ-माता की पूजा करते हैं, उसकी इन्हें कोई परवाह नहीं है।

पिछले पचहत्तर वर्षों से गौ-हत्या का केस उच्चतम न्यायालय में लम्बित है पर दो दिनों में कुत्ते के मामले की सुनवाई कर दी जाती है।

बड़े से बड़े आतङ्कवादी के लिए उच्चतम न्यायालय रात के बारह बजे भी खुल जाते हैं। ऐसे अधिवक्ता, ऐसे न्यायाधीश, ऐसा समाज बनता जा रहा है। बहुत सारे व्यक्ति अधिकार की बात करते हैं, पर यह देश तो अधिकार के मूल पर ही बना हुआ है।

पुत्रधर्म, पितृधर्म, पत्नीधर्म, स्त्रीधर्म आदि। यह देश धर्म के आधार पर ही बना हुआ है। ऐसे व्यक्ति केवल अधिकार की ही बात करते हैं, कर्तव्य की बात नहीं करते। बाल-अधिकार, मानवाधिकार, महिला-अधिकार तथा कुत्ते के अधिकार की बातें करते हैं और न जाने कितने अधिकारों की बात करते हैं पर कर्तव्यों की बात कभी नहीं करते।

दुराचारी स्त्रियाँ, दुराचारी पुरुष स्वयं को आधुनिक कहते हैं और जो व्यक्ति सत्सङ्ग करते हैं, उनके विषय में कहते हैं कि ये तो पिछड़े हुए हैं, ये पिछड़े समाज के हैं। अकारण किसी को स्पर्श न करना, यह हमारी परम्परा है, यही तो कोरोना काल का मन्त्र है। अन्य सभी तो हाथ में हाथ मिलाते हैं, हमारी तो दूर से नमस्कार करने की ही पद्धति है।

जहाँ सही-गलत का भेद नहीं, वह बुद्धि तामसी है। जहाँ हम नवरात्र में देवी की पूजा करते हैं, आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तथा सारे पश्चिम बङ्गाल के अनेक शैक्षणिक संस्थानों में जो वामपन्थी भरे पड़े हैं, वे महिषासुर की पूजा करेंगे। यह सब कुछ हो रहा है भारत-वर्ष में। जिस महिषासुर के मर्दन का हम उत्सव मनाते हैं, यह वामपन्थी कहते हैं, हम उनके वंशज हैं। ये दुर्गा माता के विषय में अपशब्द कहते हैं, यह है तामसी बुद्धि।

18.33

धृत्या यया धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या, धृतिः(स्) सा पार्थ सात्त्विकी॥18.33॥

हे पार्थ! समता से युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा (मनुष्य) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है अर्थात् संयम रखता है, वह धृति सात्त्विकी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- "हे पार्थ! जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण

करता है, वह धृति सात्त्विकी है।"
पहले तीन प्रकार की बुद्धियों को बतलाया गया, अभी तीन तरह की धृतियों के विषय में बताएँगे।

व्यभिचारिण्य, साधकों और सामान्यजन में यह बढ़ रहा है। पहले कुछ न्यूनतम वस्तुओं से ही हमारा जीवन बीत जाता था। सामान्य रूप से कुछ वस्त्र, हाथ में बाँधने वाली घड़ी, ऐसी कुछ वस्तुओं से ही हमारा कार्य चल जाता था। आजकल घड़ियों का पूरा सङ्ग्रह होता है, जूतों का सङ्ग्रह होता है, अनेक जोड़ी जूते-चप्पल अलमारी में पड़े रहते हैं। घर में यदि दस व्यक्ति हैं तो पचासों जोड़ी दैनिक उपयोग की वस्तुएँ पड़ी रहती हैं। कहीं टाई की रैक तो कहीं कपड़ों की रैक, कहीं साड़ियों की रैक। यह है व्यभिचार। मोबाइल सही काम करता रहता है, फिर भी नवीन की चाह। कोई नया मॉडल आया, तो उसकी चाह।

18.34

यया तु धर्मकामार्थान्, धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी, धृतिः (स्) सा पार्थ राजसी॥18.34॥

हे पार्थ! समता से युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा (मनुष्य) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है अर्थात् संयम रखता है, वह धृति सात्त्विकी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- "हे पृथापुत्र अर्जुन! फल की इच्छा वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति के द्वारा, अत्यन्त आसक्ति से धर्म, काम और अर्थ को धारण करता है, वह धारण शक्ति राजसी है।" राजसी की धारणा प्रतिदिन बदलती है। धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष पर बदलता रहता है। कभी धर्म में बुद्धि लगती है तो कभी काम में लग जाती है या फिर धन कमाने में लग जाती है।

हममें से ऐसे कितने होंगे जो कई दिनों तक पूजा-पाठ में लग जाते हैं?
कितने जो व्यापार में ही लगे रहते हैं?
फिर कितने ही घूमने-फिरने में लग जाते हैं?
यह जो असन्तुलन है, वह राजसी है।
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन चारों में जो उठा-पटक है, वह राजसी है।
आजकल गीताजी में बहुत मन लग रहा है, बता नहीं सकते कितने दिन लगा रहेगा! यह राजसी है।

18.35

यया स्वप्नं(म्) भयं(म्) शोकं(म्), विषादं(म्) मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा, धृतिः(स्) सा पार्थ तामसी॥18.35॥

हे पार्थ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धृति के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और घमण्ड को भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है, वह धृति तामसी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- हे पार्थ! वह मनुष्य, जिसकी बुद्धि भ्रमित है, जिसकी बुद्धि दुष्ट है, वह जिस निद्रा, भय, चिन्ता और घमण्ड को नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किए रहता है, वह धारण शक्ति तामसिक है। निद्रा, भय, चिन्ता और मद का धारण करना श्रीभगवान् ने तामसिक बताया है।

हम सब कभी-कभी ऐसे प्रमादी हो जाते हैं, जिसकी सीमा नहीं। हम में से न जाने कितने व्यक्ति अपने देश को, अपने महापुरुषों को, प्रमाद में गाली देने का काम करते हैं।

हम में से न जाने कितने व्यक्ति इस कहावत को कहते हैं कि **"सौ में नब्बे बेईमान, फिर भी मेरा देश महान्।"**

कैसी विडम्बना की बात है, उन नब्बे में हम भी तो हैं! फिर भी हम ऐसी धारणा रखते हैं। हम में से कई सारे व्यक्ति यह भी

कहते हैं कि **“मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी!”**

जिस व्यक्ति ने सारी अङ्ग्रेज सरकार को घुटने पर लाकर रख दिया, वह भी मजबूरी!
बताओ तो!
वे शक्ति के प्रतीक हैं या मजबूरी के?
यह तामस बुद्धि की मानसिकता है। अपने देश का, अपने महापुरुषों का, अपने परिवार का, समाज में जाकर अपमान करते हैं। परिवार की बातों को बाहरी व्यक्तियों के सामने रख देते हैं। यह तामसिक बुद्धि है।

“बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया।”

यह भी बहुत ही स्वाभिमान से कहते हैं। सोचो तो! यह कौन सी बुद्धि है? हाँ, यह तामसिक बुद्धि है।

एक व्यापारी के बारह ऊँटों की कहानी सुनते हैं। वह अपने बारह ऊँटों लेकर उनके व्यापार के लिए निकला। रास्ते में तूफान आने के कारण, उसका बहुत सारा सामान क्षतिग्रस्त हो गया। बहुत सी मुश्किलों से, वह बारह ऊँटों को बचाकर एक धर्मशाला पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह देखता है कि बहुत सारा सामान तो गिर गया, उसके साथ ही ऊँटों को बाँधने वाली रस्सी भी गिर गई थी। अब वह सोचने लगता है कि यदि ऊँटों को नहीं बाँधा, तो वे यहाँ-वहाँ चले जाएँगे। सराय के मालिक से चर्चा करता है, “मैं रात को आपके यहाँ रुक जाता हूँ, जो किराया होगा दे दूँगा। क्या मेरे बारह ऊँटों को रखने के लिए भी जगह है? उन्हें बाँधे रखने के लिए मेरे पास रस्सियाँ नहीं हैं, क्या तुम रस्सी दे सकते हो?” सराय का मालिक कहता है, “रस्सी के विषय में मुझे पता नहीं, पिताजी से पूछता हूँ।”

उसके पिताजी आकर पूछते हैं कि उसके पास कितनी रस्सियाँ हैं? व्यापारी बताता है उसके पास तो एक ही रस्सी है तो सराय वाला बताता है कि “काम हो जाएगा, तुम जाकर सो जाओ।” व्यापारी पूछता है, “कैसे होगा? मेरे तो बारह ऊँट हैं।” सराय वाला फिर कहता है कि “हो जाएगा। यदि तुम्हारा कोई ऊँट खो जाता है तो उसकी भरपाई मैं कर दूँगा।” व्यापारी फिर पूछता है, “पर करोगे कैसे?”
सराय मालिक कहता है, “चलो! वह भी मैं तुम्ही से करवाता हूँ।”
सराय का मालिक कहता है कि “तुम अपने पहले ऊँट को रस्सी से बाँधो, नीचे बैठा दो और उसे सुला दो।”
व्यापारी ने उसे बाँध दिया, उसकी पीठ पर तीन थपकी दी तो वह बैठ गया और उसकी गर्दन पर दो थपकी देने से वह सो भी गया। इसके बाद सराय का मालिक, व्यापारी को ऊँटों को बाँधने और सुलाने का नाटक करने के लिए कहता है। मध्य रात्रि में व्यापारी भय के कारण आकर देखता है तो सभी ऊँट आराम से सो रहे हैं। सवेरे व्यापारी सराय के मालिक को धन्यवाद देता है। जब ऊँटों को उठाने का प्रयास करता है तो वे उठते ही नहीं। सराय के मालिक को पूछने पर, मालिक कहता है “उठेंगे कैसे! पहले उन्हें खोलो तभी तो वे खड़े होंगे।” फिर व्यापारी कहने लगता है कि “वे बन्धे ही कहाँ हैं जिसे खोलना होगा।”
सराय का मालिक कहता है कि “जैसे उन्हें बाँधने का नाटक किया था, वैसे ही उन्हें खोलने की प्रक्रिया करो।” व्यापारी प्रत्येक ऊँट को खोलने का नाटक कर, पीठ पर दो थपकी दे देता है तो वे उठकर खड़े हो जाते हैं। ऊँटों को नहीं पता कि किस रस्सी से बन्धे हैं। उसी प्रकार हमें भी पता नहीं कि हम किस रस्सी से बन्धे हुए हैं।

हम स्वयं को अपनी आदतों की रस्सी में बाँधकर रखते हैं। सोचते हैं कि मुझसे होता नहीं, मैं कर नहीं पाता। गीताजी को याद तो करना चाहता हूँ पर होता नहीं। मेरे पास तो बुद्धि नहीं है, मेरे पास समय भी नहीं है आदि-आदि। ये सारी रस्सियाँ हमने उन बारह ऊँटों वाली बाँध कर रखी हैं। हम वे ही लोग हैं जो स्वयं को अलग-अलग धारणाओं में बाँधकर जीवन में पीछे धकेलते रहते हैं। जिस दिन कोई सच्चा गुरु हमें मिल जाता है तो ये काल्पनिक रस्सियाँ खुल जाती हैं। अपनी धारणाओं को हमने स्वयं बाँधा है। हम उस परब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं जो किसी भी धारणा से नहीं बन्धा हुआ है।

इसके उपरान्त हरिनाम सङ्कीर्तन के साथ आज का सत्र समाप्त हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

विचार-मन्थन (प्रश्नोत्तर)-
प्रश्नकर्ता- श्रीराम जी

प्रश्न- क्या गीता जी पढ़ने से मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी?
उत्तर- गीता जी मात्र पढ़ लेने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। गीता जी को जीवन में लाने से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। गीता जी पढ़ने से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्राप्त होगा,आत्मशुद्धि होगी परन्तु उन मार्ग पर सतत चलते रहने से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है।मात्र पढ़ लेने से ही नहीं।

प्रश्नकर्ता- मलय जी
प्रश्न- सुना है कि अन्नदान का अन्न नहीं खाना चाहिए।
उत्तर- अन्नदान का अन्न नहीं खाना चाहिए। आपको आवश्यकता नहीं हो तो कोई भी वस्तु बिना मूल्य के नहीं लेनी चाहिए। आपके ऊपर ऋण चढ़ जाता है।यथासम्भव किसी से कोई सेवा भी नहीं लेनी चाहिए ।
प्रश्न- पर जिन्होंने संन्यास ले लिया वे तो भिक्षा का ही अन्न खाते हैं, क्या उन पर भार नहीं होता ?
उत्तर- जिन्होंने अपने जीवन में संन्यास ले लिया वे भिक्षा के अधिकारी हो जाते हैं। उन पर भार नहीं होता। संन्यासी को भिक्षा देकर समाज अपना ऋण चुकाता है ।

प्रश्नकर्ता- किरण जी
प्रश्न- प.पू.स्वामी जी से कैसे मिल सकते हैं और उनसे दीक्षा कैसे ले सकते हैं ? ये सब जानकारी कैसे मिल सकती है?
उत्तर- प.पू.स्वामी जी के कार्यक्रम के बारे में जानकारी इस वेबसाइट से मिल सकती है। **dharmashree.org/events** उनके कार्यालय से उनके कार्यक्रम (Schedule) व अन्य सारी जानकारी सरलता से मिल सकती हैं।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||